श्री भागवत दर्शन भागवती कथा, खण्ड ८३ :—

गेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः। तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।

श्री भागवत दर्शन

भागवती कथा

खण्ड ८३

गीतावार्त्ता (१५)

व्यासशास्त्रोपवनतः सुमनांसि विचिन्विता ।
कृतं वै प्रभुदत्तेन भागवतार्थं सुदर्शनम् ॥

लेखक

श्री प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी

संशोधित मूल्य २-०-रुपया

प्रथम सस्करण १००० प्रति

वैशाख २०२८ मार्च १९७१

[मू० १-६५ पै०]

विषय-सूची

—०—

कीर्तनीयो सदा हरिः

सचित्र

भागवत चरित

(सप्ताह)

रचयिता—श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी

श्रीमद्भागवत के १२ स्कन्धों को भागवत सप्ताह के क्रम से ७ भागों में बाँट कर पूरी कथा छप्पय छन्दों में वर्णन की है। श्रीमद्भागवत की भाँति इसके भी साप्ताहिक, पाक्षिक तथा मासिक पारायण होते हैं। सैकड़ों भागवत चरित व्यास बाजे तबले पर इसकी कथा कहते हैं। लगभग हजार पृष्ठ की सचित्र कपड़े की सुदृढ़ जिल्द की पुस्तक की न्योछावर ६)५० मात्र है। थोड़े ही समय में इसके २३००० के ५ संस्करण छप चुके हैं। दो खंडों में हिन्दी टीका सहित भी छप रही है। प्रथमखंड प्रकाशित हो चुका है। उसकी न्योछावर ११) है। दूसरा खंड प्रेस में है।

संस्मरण (३) पिछले खंड का शेष

उन दिनों में झूसी के हंसतीर्थ वाली वट के नीचे की कुटी में रहकर अनुष्ठान कर रहा था। एक दिन रात्रि मे स्वामीजी पधारे। मै कुटिया की छत पर सो रहा था। उन्होने पुकारा - "ब्रह्मचारी! ब्रह्मचारी!"

मैं उतर कर नीचे आया, चरणस्पर्श किये। पूछा—"महाराज! भिक्षा करोगे ?"

हँसते हुए बोले—"हाँ, क्यो नही, कराओगे तो करेंगे।"

मैं समझ गया, स्वामीजी कई दिन के भूखे हैं। शीघ्रता से अँगीठी मे कोयले डालकर आग जलायी। शीघ्रता से शाक छोंक कर परामठे बनाने लगा। मैंने कहा—"आइये स्वामीजी! प्रसाद पाइये"। अब स्वामीजी प्रसाद पाने बैठे। अब याद तो नहीं कै बार मैंने आटा माँडा और कितने परामठे उन्होंने खाये। खाते जायें और हँसते जायें। बार-बार कहते जायें, "साधुः स्वाद विजानाति" अर्थात् अन्न का स्वाद तो साधु ही जानता है।

लोग मुझे भी साधु कहते हैं, किन्तु अब मैं अन्न का स्वाद नही जानता। यद्यपि खाता हूँ एक ही बार किन्तु भक्तगण इतने पदार्थ भगवान् के भोग मे रख देते हैं, वे यथार्थ भूख लगने ही नहीं देते। हाँ, मैंने भूख का अनुभव अवश्य किया और भली भाँति किया है, उन्हीं संस्मरणों को आगे लिखूँगा।

भूख अन्न न रहने पर बढती है, चारो ओर मीठा भरा पड़ा हो, तो मीठे के देखने से उसकी गन्ध से ही चित्त भर जाता है, किन्तु मीठा न मिले तब मीठे पर कैसा चित्त चलता है, इसके दो

उदाहरण देता हूँ। जहाँ चोट लगी रहती है, वहीं अदि बदि के फिर फिर चाट लगा करती है, अन्न के अभाव में भूख अत्यन्त बढ जाती है (क्षते प्रहरे निपतन्त्यभीक्ष्णमन्नक्षये वर्धति जाठराग्निः) चारो ओर अन्न भरा पडा हो तो भूख लगती ही नहीं है दुष्काल मे जो अन्न के बिना दो तीन दिन मे ही आदमी मर जाते है। इसका कारण यही है, कि उन्हे सतत अन्न का अभाव खटकता रहता है हाय ! अब मुझे अन्न न मिलेगा। इसी चिंता से मर जाते हैं। अन्न का अभाव न हो दृढ सकल्प हो तो कई महीनों तक आदमी बिना खाये रह सकता है, मैं रहा ही हूँ। भावना का सभी पर विशेष प्रभाव होता है।

जिन दिनों विरक्त वेष बनाकर टाट की एक लँगोटी लगाकर मैं गगा किनारे या हिमालय मे घूमता था, उन्हीं दिनो घूमते घामते कूर्मांचल प्रदेश अल्मोडा मे पहुँचा। कफ प्रकृति होने से मीठी वस्तुओ मे मेरी कम रुचि रही है। गुड मे चीनी मे विशेष अनुराग नहीं रहा। बाल्यकाल मे तो मीठे में रुचि होना स्वाभाविक है, फिर तो मीठे से बडी विरक्ति सी हो गयी थी। किन्तु जब निष्किंचन बनकर भिक्षान्न पर निर्वाह करने लगा। मीठे का अभाव हो गया, तब गुड खाने की प्रबल इच्छा होने लगी। अल्मोडा से सडक-सडक जा रहे थे, एक दुकानदार के यहाँ बहुत ही गन्दा काला-काला सडा-सा गुड रखा था, उसने थोडा-सा गुड़ दिया, उस गुड मे जितना स्वाद आया, बस, कहने की बात नहीं। गूँगे के गुड वाली कहावत यहाँ चरितार्थ होती है। आज यदि वैसा गुड दीख भी जाय, तो निश्चय ही वमन हो जाय। अभाव

में इच्छा कैसी प्रबल होती है, इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है।

★ ★ ★

भगवान् ने बनाया तो है मुझे जन्मजात भिखारी। घर छोड़ने के अनन्तर अब तक भिक्षा पर ही निर्वाह करना पडता है। बहुत ही बाल्यकाल मे घर छोडा था, भिक्षा ही एक आधार था, घर मे जब काम नहीं करता था, तो माँ कहती थी—"तुम्हसे कुछ काम धाम् तो होगा नहीं, भीख ही माँगेगा।" सो बडो के वचन सत्य ही हुए। यह सब होने पर भी माँगने मे बडा लज्जा लगती है, मैंने अपने विशेष परिचितों घनिष्ट बन्धु-बान्धवो से कभी किसी बात के लिये कह दिया हो, तो उसकी शपथ तो लेता नहीं, वैसे मुझे माँगने मे बडा ही सकोच लगता है। परिग्रह से बडा ही भय लगता है। यद्यपि केवल पेट भरने के लिये माँगा हुआ भिक्षान्न परिग्रह नहीं बताया है। (भिक्षान्नअमृतान्न च भिक्षा नत्र परिग्रहः) फिर भी मुझे रोटी माँगने मे भी सदा लज्जा का अनुभव होता रहा है। जब निरक्त वेप बनाकर भी घूमता था, तब भिक्षा माँगने को दूसरे आदमी साथ रखता था। पहिली विरक्ति मे इन्द्र ब्रह्मचारी, गोविन्द ब्रह्मचारी दो साथ रहे। गोविन्द तो अल्पावस्था मे ही अनूपशहर मे मर गया। इन्द्र ने विवाह कर लिया अब वह आचार्य इन्द्र नारायण गुर्टू के नाम से विख्यात है, उसकी पत्नी शचीरानी गुर्टू हिन्दी की सुप्रसिद्ध लेखिका है। दूसरी झोक मे रामपालजी रहे। इस प्रकार भिक्षा भी मैं दूसरो की माँगी हुई खाता रहा हूँ। अब तो भिक्षा का प्रकार ही बदल गया। अब तो भिक्षा मे पक्कान्न न लेकर नकद नारायण लेने लगा हूँ, प्रति वर्ष कुछ भिक्षा सदस्य बनाये जाते हैं,

जिनसे केवल दो रुपये मासिक लिये जाते हैं। इसे भिक्षा न कहकर चन्दा कहना ही अधिक उपयुक्त होगा।

हाँ, तो उस समय माधुकरी वृत्ति थी, जो थोडा बहुत रूखा-सूखा मिल गया उसी से उदर दरी को भरकर आगे चल दिये। जाडे के दिन थे, ईख कट गयी थीं, ईखों का रस कढ़ाइयों में औट रहा था। मुजफ्फरनगर या बिजनौर की ओर गगा तट की बात है। दोपहर मे कहीं आधा पेट या भर पेट भिक्षा मिली थी। सायकाल एक साधु की कुटी पर पहुँचे। उन्होंने पशुओं के रहने योग्य एक गदी सी जगह बता दी उसी में लेटे। पास मे ही ईख के रस की कढाई में रस औटाया जा रहा था, उसकी मीठी-मीठी गध ने हठात् रस खाने की इच्छा उत्पन्न कर दी। मैंने इन्द्र को भेजा कुछ राब दे दे। किसान ने कहा—'अभी रस औटा नहीं। औट जाने पर आना।' हम लोग प्रतीक्षा करते रहे। आधी रात्रि मे जाकर उसने हमारे कमडलु मे थोडी सी राब दे दी, उसे थोडा-थोडा पीकर सो गये। कमडलु मे पानी भरकर रख दिया। प्रातः काल उठकर कुल्ला करने को ज्योंही कमंडलु में से पानी लेकर मुँह में डाला तो वह तो शहद के समान मीठा था। प्रतीत होता है, रात्रि मे जो राब मिली थी, वह जमी की जमी कमंडलु में रह गयी थी, बिना ही मुख धोये आँख मींचकर उस पूरे शरबत को पी गये। कैसे थे वे दिवस! अभाव में भी कितना आनन्द था। असग्रह में भी कैसी मस्ती थी। 'ते हि नो दिवसाः गताः' वे दिन हमारे चले गये।

★ ★ ★

दो दिन से भर पेट भिक्षा नहीं मिली थी, एक आधी जो भी रोटी मिल जाती उसी को खाकर भर पेट गगाजल पीकर आगे बढ़ जाते। चलते-चलते रात्रि में ९-१० बजे ऋषिकेश पहुँचे।

कैलाशाश्रम के पहिले नैपाली क्षेत्र के सम्मुख एक सायकालीन क्षेत्र था। उसमें सायकाल में साधुओं को चार-चार रोटियाँ दी जाती थीं। रोटियाँ बट चुकी थीं चौका उठ चुका था, तब हम लोग वहाँ पहुँचे। प्रबन्धक कोई वृद्ध पजाबी साधु थे। इन्द्र ने जाकर उनसे कहा—"स्वामी जी! हम बड़े भूखे हैं, कुछ भिक्षा हो तो दिला दीजिये।"

स्वामी जी ने अन्यमनस्क भाव से कहा—"अरे, भाई! तुम लोग तो बहुत पिछड कर आये। अब तो चौका उठ गया है। अब यहाँ क्या है?" फिर थोडी देर सोचकर उन्होंने पुकारा—"भडारी! भडारी! देखो, ये दो ब्रह्मचारी आये हैं, एक आध रोटी हो तो इन्हें दे दो।"

अन्न क्षेत्र के भडारी तो भगवान् का नाम ही होते हैं। पूरे देवता ही होते हैं। सेर भर घी मिले तो पहिले अपने लिये निकाल कर बढिया रोटी बनाकर, यथेष्ट घृत से दाल छौंककर प्रायः पहिले अपने भगवान् के भोग को रख लेते हैं, तब अतिथि अभ्यागतों को तिरस्कार के साथ बाँटते हैं। वे भी बेचारे क्या करें मगता आकर उन्हे जला कटी बुरी-बुरी बात सुनाते हैं, क्रोध करते हैं कॉय-कॉय मचा देते हे, झगडा करते है, नित्य सुनते सुनते उनकी माँगने वालों के प्रति अश्रद्धा हो जाती हे। पढे-लिखे होते नहीं। उनकी अपनी निज की श्रद्धा नहीं। नौकरी बजाते है, पैसे के लिये बनाते बाँटते है। अत वे प्राय: चिडचिडे स्वभाव के हो जाते हे। किन्तु कभी कभी उनके हृदय में भी भगवान् बैठ जाते हैं।

भडारी आया। उसने हम दोनों को ऊपर से नीचे तक देखा और बडे उल्लास के साथ बोला—"ब्रह्मचारियो! भोजन करोगे? अच्छा आओ।"

यह कहकर उसने हमें भीतर चौके में बैठाया। ऊपर आलमारी से अपने लिये वढिया छुकी हुई दाल एक कटोरदान में घी से डूबी हुई पतली-पतली रोटियाँ निकालीं। हमारी थाली में ५-५ ७-७ रोटियाँ रखकर दाल देकर कहा—"अच्छा लो, खाओ।" कई दिन के भूखे थे, चढती अवस्था थी, नित्य १५-१५, २०-२० मील चलते थे, हम खाने लगे। हमारे खाने के ढङ्ग से ही वह समझ गया, इतनी रोटियों से इनका काम चलने का नहीं। चूल्हे में आग तो जल ही रही थी, उसने तुरन्त बहुत-सा आटा साना और तवा चढाकर गेंद की तरह फूली फूली रोटियाँ बना-बना कर हमारी थालियों में फेंकने लगा। रोटियाँ बनाता जाय, बना-बनाकर फेंकता जाय और बडे उल्लास के साथ कहता जाय—"ब्रह्मचारियो ! खूब खालो, पेट भर कर खालो, भूखे मत रहना। परवाह मत करना।"

अंधे तुझे क्या चाहिये ? "दो आँखें" हम तो यह चाह ही रहे थे, आज भगवान् ने केसा सयोग बना दिया। उस दिन पता नहीं १००-१०० रोटियाँ खायीं या ५०-५० परन्तु उन्हे खाये आज पचासों वर्ष हो गये, किन्तु अभी वे रोटियाँ कठ से नीचे नहीं उतरीं, ज्यों की त्यों उसी स्वाद के सहित गले में रखी हुई हैं। उसी दिन अनुभव हुआ अन्न ही जीवन हे। अन्नदान करने का अर्थ है जीवन दान। इसीलिये मैंने अपने आदमियों से कह रखा है भोजन के समय कोई भी भूखा प्राणी आवे उसे निराश मत जाने दो। अन्न के सभी अधिकारी हैं। जिसके पेट है उसे भूख लगती है और भूखा प्राणी केसा भी क्यों न हो वह अन्न का पात्र है, अधिकारी है।

★ ★ ★

एक प्रसग और भी याद आ गया। उसी विरक्ति के प्रवाह मे मैं वृन्दावन गया हुआ था। टाट की एक लॅंगोटी एक साफी यही हमारा परिग्रह। वैसे वृन्दावन मे उन दिनों बहुत-से अन्न-क्षेत्र थे किन्तु माँगे केसे ? कहीं से दूर से आये थे। दो पहर ढल गया था। पेट में चूहे कुदक रहे थे, कहीं किसी ने पूछा नहीं था। श्री राधाबल्लभ जी के मदिर मे गये। भगवान् का राजभोग हो चुका था, राधावल्लभ जी सो गये थे, हम आँगन में बैठ गये। इतने में ही कहीं से करपात्री जी भी आ गये। मुझे देखते ही खिल उठे और बोले—"ब्रह्मचारी जी आप कब आये ?" मैंने कहा—"स्वामी जी ! अभी आया हूँ, क्या हाल चाल है आप कब से हो ?"

वे बोले—"मैं तो कई दिनों से यहीं हूँ। भाई, बडी भूख लग रही है।"

उन दिनों हमारे करपात्रीजी, करपात्री ही थे। किसी भी प्रकार की सवारी पर न बैठना, एक लॅंगोटी एक साफी के अतिरिक्त कोई वस्त्र नहीं रखना। कमडलु भी नहीं, कोई पात्र भी नहीं। जो भी मिले हाथ में लेकर खा लेना। पात्र न रखने से ही सब लोग उन्हे करपात्री करपात्री कहने लगे। मुझसे बोले—"देखो, ब्रह्मचारी जी ! यहाँ की ऐसी प्रथा है, कि यहाँ के ब्रजवासी लोग बासी रोटियो के टुकडे कर करके एक जगह रख देते हैं, जब कोई साधु मधुकरी लेने जाता है, तो वहीं से बैठी-बैठी ब्रज-वासिनि कह देती हैं—"बाबा ! वहाँ टुकडे धरे हैं। एक उठा ले जा।" सो भैया, सब जाति के साधु वहीं से उठा लाते हैं, मुझसे तो ऐसा करते बनता नहीं।

यह सुनकर मैं हँस पडा। ब्रज के साधु तो ब्रजवासियों के जूठे कूठे टुकडों के लिये तरसते रहते हैं, वे कहते हैं—

ऐसो कब करिहौं मन मेरो ।
कर करवा हरवा गुंजनि को कुञ्जनि माँहि बसेरो।
ब्रजवासिनि के टूँक भूठ अरु घर-घर छाछ महेरो॥
भूख लगै तब माँगि खाइ हों गनों न साँझ सबेरो।
व्यास दास की आस यही है मेरे गाँवन खेरो॥

बगाली साधुओं को ब्रजवासियो के भूठे टूँक खाने में भी कोई सकोंच नहीं वे ब्रजवसियो को भगवत् सखा मानते हैं, किन्तु हमारे करपात्री जी पुरनिया ब्राह्मण ठहरे, वे भला इसे कैसे सहन कर सकते थे।

हम लोग ये बाते कर ही रहे थे, कि इतने मे ही श्री राधा-वल्लभ जी के मुनीम जी तिलक छापे लगाये हुए वहाँ आये। हमें आँगन में बेठा देखकर वे बोले—"महाराज! भगवान् का प्रसाद पाइये।"

हम जब तक हाँ ना कुछ भी नहीं कर सके, तभी तक वे श्रीराधावल्लभजी का प्रसाद दाल, भात, कढी, खीर, बडी-बडी गेटियाँ साग लेकर आ पहुँचे।। पत्तलो पर प्रसाद परसा गया। उस प्रसाद मे कितना अनुपम स्वाद आया। बस, "गिरा अनयन नयन बिनु बानी।"

वे मुनीम जी अभी तक हैं, विरक्त वेष्णव सन्त बन गये हैं। श्री राधावल्लभजी के पीछे एक कुटिया म चुप चाप निवास करके अहर्निशि भजन करते रहते है। कभी-कभी जब मैं श्री राधावल्लभ जी के दर्शनो को जाता हूँ, तो उनके भी दर्शन करता हूँ और उन्हे उस घटना को सदा सुनाता हूँ। वे अब भी जब जाता हूँ, बहुत सुन्दर-सुन्दर प्रसाद देते हैं। किन्तु उनका वह प्रसाद अविस्मर-

णीय है। मानों स्वयं साक्षात् श्री राधावल्लभजी ने ही उनके हाथों भिजवाया था।

★ ★ ★

ऐसी एक नहीं अनंत कथायें हैं, किन्तु डरता इसीलिये हूँ, कि अपनी लघुता कहने मे भी एक प्रकार का अहंकार आ जाता है, स्थान स्वल्प, कथायें बहुत। पूरा जीवन ही इन कथाओं से भरा पड़ा है। उद्धवजी ने कहा है—"प्रतिक्षणानुग्रहभाजनोऽहम्" हे प्रभो! मैं तो प्रतिक्षण आपकी अनुग्रह का अनुभव करता हूँ। पूरा जीवन ही उनकी कृपा के ऊपर अवलंबित है। इन कथाओं में मेरी बात, मेरा अहंकार यदि आ भी जाय, तो यह मेरा दोष है, मै तो अन्न भगवान् की महिमा बता रहा हूँ। एक बाल्य काल की कथा और कहकर इस प्रसग को समाप्त करूँगा।

× × ×

बहुत छोटा था, बाल्यावस्था थी, नया ही नया घर छोडा था, मथुरा की मयाराम पाठशाला मे पढता था। पाठशालाओं के विद्यार्थियों का जीवन कितना अभावमय होता है, इसका अनुभव पाठशाला के विद्यार्थी बने बिना कोई कर ही नहीं सक्ता। एक बार क्षेत्र का भोजन, सायकाल चना चबैना की चिंता, तेल बत्ती के लिये उद्योग। विद्यार्थियों को निमत्रण मिल जाय तो मानों स्वर्ग मिल गया। अच्छा, विद्यार्थियों के विषय में फिर कभी लिखूँगा अब तो तुम उस घटना को सुन लो।

विद्यार्थियों मे परस्पर में पाठ पढ़ने की चर्चा के अतिरिक्त दूसरी चर्चा दान, दक्षिणा तथा निमंत्रण की ही होती है। एक दिन विद्यार्थियों में चर्चा चली। क्वार की या चैत्र की नवरात्रियों

के दिन थे, उन दिनों दुर्गा सप्तसती के पाठ, सेठ लोग राजा लोग घर-घर कराया करते थे। नौ दिन के पाठ के कोई २॥) कोई ५) ऐसे देते थे। विद्यार्थियो ने कहा अमुक राजा के यहाँ नव-दुर्गाओं में, १०८ दुर्गा सप्तसती के पाठ होते हैं, वहाँ चला जाय। वहाँ दक्षिणा बहुत मिलती हे अब ठीक तो याद नहीं रहा करौली या धौलपुर इन दो राज्यों मे से एक राज्य था। मुझसे भी मेरे साथियों ने चलने को कहा।

मैंने कहा—"भाई, मैंने तो आज तक कभी दुर्गा सप्तसती का पाठ किया नहीं।"

मेरे साथियो ने कहा—"अरे, यार चलो भी उसमे रखा ही क्या है, केवल पाठ ही तो करना हे, सब कर लोगे।"

मैं उनकी बातों में आ गया। बच्चो को घूमने फिरने की इच्छा तो बनी ही रहती हे। हम ५, ६ विद्यार्थी बिना टिकट उस राज धानी मे गये। रात्रि में भूखे ही सो गये। दूसरे दिन सभी पाठ शालों की परीक्षा का दिन था। राजा के पंडित आकर परीक्षा लेते। जो परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाते उनका पाठ मे वरण होता था, जो अनुत्तीर्ण हो जाते, उन्हे लौटा दिया जाता था। हम लोग भी परीक्षा देने गये। राजा साहब भी परीक्षास्थल पर उपस्थित थे। पारी पारी से पंडित परीक्षा देने पधारते। राजपंडित कहीं से भी पढवाते, फिर परस्पर में सम्मति करके उत्तीर्ण अनुत्तीर्ण करते।

मेरी भी पारी आयी। एक तो अपरिचित स्थान, इतने भारी-भारी पंडित, ऐसी सम्मुख परीक्षा देने का प्रथम अवसर और फिर कभी भी न पढ़ी पुस्तक की परीक्षा। मैं भली प्रकार न पढ सका। मैंने एक बूढे पंडित को कहते सुना—"लोग दुर्गा सप्तशती को सामान्य ग्रन्थ समझते हैं। सोचते हैं हम पाठ कर लेंगे।"

जिस बात का भय था, वही हुआ, हमसे स्यात् एक को छोडकर सब अनुत्तीर्ण माने गये। हमें अनुत्तीर्ण होने का उतना दु ख नहीं था, समस्या यह थी, कि दोपहर का भोजन कहाँ मिलेगा।

सबने कहा—"राजा के बगीचा मे एक अन्नक्षेत्र है वहाँ सबको भोजन मिलता है।" वहाँ हम सब लोग गये, किन्तु वहाँ सबको भोजन नहीं मिलता था, कुछ नियमित सख्या मे लोगो की भर्ती होती थी। जिसकी भर्ती हो जाती थी, उसी को भोजन मिलता था। हमारे साथियों में से कुछ की तो भर्ती हो गयी, हमारी नहीं हुई। बडी निराशा हुई। सबके सामने भोजन परसा गया, मै सामने बैठा टुम टुम देख रहा था। बालक ही ठहरा, परदेश की बात भूख की प्रबलता, मैं अपने को रोक न सका और रोने लगा। तब भरती करने वाले को दया आ गयी उसने मुझे भी निठा दिया। भोजन करके हम सब पुन. बिना टिकट गाडी मे बेठ गये और मथुरा जकसन पर उतर पडे किसी ने कुछ पूछा ही नहीं।"

इस प्रकार मैंने अपने जीवन में अनुभव किया है अन्न ही जीवन है, अन्नदान का अर्थ है जीवन दान इसीलिये छादोग्य उपनिषद् में लिखा है—

बल से भी उत्कृष्ट अन्न है। (क्योंकि अन्न के बिना बल आता ही नहीं।) इसीलिये यदि कोई दश दिन भोजन न करे, तो वह जीवित भी रह जाय, तो भी उसकी देखने की शक्ति, सुनने की शक्ति, मनन करने की शक्ति, समझने की शक्ति, विशेष ज्ञान की शक्ति क्षीण हो जाती है। वही पुरुष यदि भोजन करता है,

तो उसके देखने की शक्ति, सुनने की शक्ति, मनन करने
शक्ति, समझने की शक्ति, विशेष ज्ञान की शक्ति बनी रहती
बढ़ती रहती है। इसलिये सनत् कुमार ऋषि नारदजी से
रहे हैं—सो नारद जी ! अन्न की ब्रह्म बुद्धि से उपासना कर
चाहिये। वह "जो अन्न ही ब्रह्म" है ऐसी उपासना करता है
अन्नवान् और जल वाले लोकों की प्राप्ति होती है। जहाँ
अन्न की गति है वहाँ तक उसकी स्वेच्छा गति हो जाती है।
कि अन्न की 'यह ब्रह्म है' इस भाव से उपासना करता है।※

संसार में दान का बड़ा माहात्म्य है। सभी शास्त्रों में दान
अत्यन्त प्रशंसा की गयी है। पुराणों में तो यहाँ तक कहा ग
है, कि सैकड़ों मनुष्यों में से कोई एक शूरवीर होता है। सह
में से कोई एक पंडित होता है। लाखों में से कोई एक अच्छ
वक्ता होता है। लाखों में कोई दाता होता है या नहीं इस
संदेह है।*

वास्तव में दान करने वाले दाता से बढ़कर भाग्यशाली को
होगा। लोग अपने प्राणों का प्रण लगाकर पैसा पैदा करते हैं
उस पैसे को स्वेच्छा से हर्ष से परोपकार में दूसरों की भलाई

※ अन्नं वाव बलाद्भूयस्तस्माद्यद्यपि दशरात्रीर्नाश्नीयाद्य
जीवद्यथवाऽद्रष्टाऽश्रोताऽमन्ताऽबोद्धाऽकर्ताऽविज्ञाता भवत्यथान्नस्यायै द्र
भवति श्रोता भवति मन्ता भवति बोद्धा भवति कर्ता भवति विज्ञात
भवत्यन्नमुपास्स्वेति। स योऽन्नं ब्रह्मेत्युपास्तेऽन्नवतो वै स लोकान्पान
वतोऽभिसिद्ध्यति यावदन्नस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति योऽन्
ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति ॥

* शतेषु जायते शूरः सहस्रेषु च पंडितः ।
वक्ता शत सहस्रेषु दाता जायेत वानवा ॥ (स्क० पु०)

लगा दे इससे बढ़कर साहसी, त्यागी, निर्भीक और उदार व्यक्ति कौन होगा। लोग तो पैसे को पैदा कर करके 'धर गुल्लक मे, धर गुल्लक मे' ही करते रहते थे। ऐसे दानी पुरुषों के पुण्य प्रताप से ही यह पृथ्वी टिकी हुई है। यदि पुण्यात्मा पुरुष न हों तो यह पृथ्वी कब की रसातल मे चली जाय। पुराणों मे सात परम पुण्यात्मा माने गये हैं। एक तो गौ सबसे अधिक पुण्यात्मा है, कि वह यह लोक और परलोक दोनों लोको में उपकार करती है, प्राणियों को सुख पहुँचाती रहती है, स्वय तृण खाकर जीवो को स्वादिष्ट दूध दही आदि देती रहती है। दूसरे ब्राह्मण पुण्यात्मा हैं, जो स्वय कुछ भी सग्रह न करके तपस्या द्वारा शरीर को कृश करते हुए, वेदाध्यपन करके ज्ञान के द्वारा जनता का उपकार करते रहते हैं। तीसरे ज्ञान के ग्रन्थ वेदादिशास्त्र परम उपकारी हैं जो पुरुषो को ज्ञान प्रदान करते हैं। चौथे सती स्त्रियॉ परम उपकारी है, जो अपना तन, मन तथा सर्वस्व पति को अर्पण कर देती हैं मृतक पति के साथ जीवित ही हँसते-हँसते जल जाती हैं। पॉचवें सत्य-वादी लोग बड़े त्यागी और उपकारी होते हैं, कि बडे से बडे लाभ को सत्य के पीछे परित्याग कर देते है। सत्य की महिमा संसार को समझाते रहते हैं। छठे जीव हिंसा न करने वाले उदार पुरुष बड़े उपकारी होते हैं जो सदा सर्वदा सभी जीवो को अभय प्रदान करते रहते हैं और सातवें दानशील पुरुष भी ससार मे सबसे बडे उपकारी होते हैं, जो प्राणों से भी अधिक प्रिय धन को दूसरो के हित में सतत त्यागते रहते हैं। इन सात प्रकार के पुण्यात्मा पुरुषों द्वारा ही यह पृथ्वी टिकी हुई है।❀

❀ गोभिर्विप्रैश्च वेदैश्च सतीभिः सत्यवादिभिः।
अलुब्धैर्दानशीलैश्च सप्तभिर्धार्यते मही॥ (स्क. पु)

दानों के शास्त्रों मे अनेक भेद बताये हैं, किन्तु सभी दानों से अन्न दान सर्वश्रेष्ठ है। अन्न ही तो जीवन है। जो अन्नदान करता है जीवन दान करता है। अन्न ही तो भूख को शान्त करता है सुख पहुँचाता है। अन्न दान का अर्थ है सर्वसुख दान करना। वह अन्नदान यदि योग्य पात्र को, विद्वान् ब्राह्मणों को दिया जाय, तो सोने मे सुगन्ध का काम करता है। अन्य दानों में तो पात्र कुपात्र का ध्यान रखना पडता है। क्योंकि कुपात्र को दान देने से दूसरे जन्म में दरिद्री होना पडता है (*कुपात्र दानेषु भवेद्दरिद्री*) किन्तु अन्नदान मे पात्र कुपात्र का कोई विचार नहीं। जिसके पेट है जो भूखा है वह कोई क्यो न हो, अन्न का अधिकारी है।

फिर अन्नदान मे एक बहुत बडी बात यह भी तो है, कि जिसे अन्नदान करने का अभ्यास होगा, उसे भूखों को अन्न देने के साथ एक बडा लाभ यह भी तो है, कि कभी न कभी उसके द्वार पर कोई सिद्ध पुरुष भी आ सकता है। एक सिद्ध पुरुष के चरण पड गये, बेडा पार हो गया।

एक महात्मा थे उन्होंने अपने एक अत्यन्त भक्त से कहा—"भैया! तुम अन्न का दान किया करो।" उसने कहा—"महाराज! किसे दान करें, सब कगले इकट्ठे हो जाते हैं, कोई सत् पुरुष आवे तो उन्हें भोजन कराने मे प्रसन्नता भी होती है। यों अहरे-गहरे पचकल्यानी भोजनभट्ट पेटुओं को भोजन कराने से क्या लाभ ?"

महात्मा ने पूछा—"*अच्छा, तुमने कभी हस को देखा है ?*"

भक्त ने कहा—"नहीं, महाराज! मैंने तो कभी हस के दर्शन नहीं किये ?"

महात्मा ने कहा—"देखना चाहते हो ?"

भक्त ने कहा—"अवश्य देखना चाहता हूँ, यदि दिखायी दे जायँ तो।"

महात्मा ने कहा—"अच्छा, एक काम करो तुम पक्षियों को नित्य नियम से अन्न डाला करो।"

महात्मा की बात भक्तजी ने स्वीकार की, वे नित्य पक्षियों को अन्न डालने लगे। पहिले कौए आने लगे। उसने महात्मा से कहा—"महाराज! हंस तो आते नहीं कौए ही कौए आते हैं।"

महात्मा ने कहा—"तुम डालते जाओ।" थोड़े दिनों में कबूतर आने लगे, मोर, दादुर, पपैया, तोता, मैना आदि आने लगे। जहाँ दाना मिलता है वहाँ की चर्चा पक्षी परस्पर में करते ही हैं। एक दिन चार हंस मानसरोवर को जा रहे थे। सर्वत्र पक्षियों द्वारा उस चारे डालने वाले की प्रशंसा सुनकर उसे देखने की उनकी भी इच्छा हुई। इसीलिये वे भी अन्य पक्षियों के साथ वहाँ आकर दाना चुगने लगे। दाता बड़ा प्रसन्न हुआ। वह दौड़ा दौड़ा महात्माजी के पास गया और बोला—'महाराज जी! महाराज जी!! हंस आ गये, हमको हंसों के दर्शन हो गये।"

तब महात्माजी ने कहा—"सतत दान का यही फल होता है। इसी प्रकार तुम निर्धन, कंगला, दीन हीन भिखारियों को अन्न देते रहोगे तो एक दिन तुम्हारे द्वार पर परमहंस सिद्ध पुरुष भी आ जायँगे। तुम्हारा समस्त दान सफल हो जायगा। एक भी सिद्ध पुरुष परमहंस आ गया, तो तुम कृतार्थ हो जाओगे। अत भूखों को अन्न दान दिया करो।"

भक्त ने पूछा—"भगवन्! कितने पुरुषों को भोजन कराने के अनन्तर सिद्ध पुरुष के दर्शन हो सकते हैं?"

महात्मा ने कहा—"सवा लाख पुरुषों को भोजन करा दो, तो भगवत् कृपा से तुम्हें सिद्ध पुरुष के दर्शन हो सकते हैं।"

भक्त सामर्थ्यवान् थे, उन्होंने कहा—"मैं सवा लाख पुरुषों को भोजन कराऊँगा, किन्तु हमे सिद्ध का पता चलना चाहिये कि सिद्ध पुरुष आ गये। यों वेष बदलकर गुप्त रूप मे भोजन कर गये, तो हमें क्या पता चलेगा, कि सिद्ध आये या नहीं। हमें सिद्ध पुरुष के प्रत्यक्ष दर्शन होने चाहिये।"

संत भी समर्थ थे, उन्होंने कहा—"हाँ तुम्हें सवा लाख पुरुषों को भोजन कराने पर सिद्ध पुरुष के अवश्य दर्शन होंगे, किन्तु किसी भी समय, किसी को अन्न से विमुख न जाने देना जिस समय भी आकर जो तुमसे भोजन की याचना करे, उस समय ही उसे भोजन देना इसमें प्रमाद न करना।"

भक्त ने कहा—"इसकी पहिचान क्या है, कि सिद्ध पुरुष आ गये ?"

महात्मा ने एक घंटा देते हुए कहा—"जिस समय यह घंटा अपने आप बिना बजाये बजने लगे, तब समझो सिद्ध पुरुष आ गये।"

भक्त ने महात्मा की आज्ञा को शिरोधार्य किया। वह सेवक सामग्रियों के साथ गंगातट पर जाकर बैठ गये। जो भी चाहे, भक्तजी के भंडार मे आकर प्रसाद पा ले। वे सदा भोजन तैयार रखते थे। कभी किसी को निराश विमुख नहीं जाने देते थे। आस्तिक श्रद्धालु थे, वे श्रद्धा से सबको भोजन कराते थे।

सवा लाख पुरुष प्रसाद पा गये, किन्तु घंटी बजी नहीं, फिर भी उनकी अश्रद्धा नहीं हुई। सोचा—"हमारे पूर्वजन्म के कोई ऐसे पाप होंगे, कि सिद्ध पुरुषों के दर्शन नहीं हुए। अब घर चलना चाहिये।"

[शेष अगले खण्ड में]

ज्ञानदाता से बढ़कर भगवान् का कोई प्रियकृत नहीं

[३६]

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः ।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि ॥*
(श्री भग० गी० १८ अ०, ६९ श्लो०)

छप्पय

गीता को जो ज्ञान देइ नित पढै पढावै ।
करि करि ताके अरथ सुपात्रनि नित्य सुनावै ॥
गद्य-पद्य में लिखै भाष्यकरि सरल बनावै ।
पक्षपात नहिँ करै जथारथ मरम बतावै ॥
मोकूँ तातैं प्रिय न अति, बढिके कोई मनुज वर ।
जगत माहिँ होवै न पुनि, तातैं प्रियतर श्रेष्ठतर ॥

जितने जप, तप, अनुष्ठान, वेदाध्ययन, यज्ञादि सत् कर्म है, ये समस्त सत्कर्म उस व्यक्ति के पुण्य के सोलवें भाग भी नहीं जो किसी एक जीव को भी अभय प्रदान कर दे। यह जीव न जाने कब से भयभीत बना ससार रूप महारण्य मे भटक रहा हे।

---

* और मनुष्यो म उससे बढकर मरा प्रिय काय करन वाला कोई नही है और उनसे बढकर कोई दूसरा पृथ्वी म अत्यन्त प्यारा होवेगा भी नहीं ॥६९॥

जीव को सबसे भारी भय तो मृत्यु का है। महासर्पिणी रूपा मृत्यु प्राणी के पीछे तभी से पड़ जाती है, जब वह जन्म लेता है, यह प्राणी किसी भी लोक में क्यों न चला जाय, मृत्यु उसका पीछा नहीं छोड़ती। एक ही ऐसा स्थान है, जहाँ मृत्यु की दाल नहीं गलती। जीव किसी भी प्रकार से, किसी भी साधन से, किसी की भी सहायता से यदि भगवान् के चरणारविन्दों के समीप पहुँच जाता है, तो फिर मृत्यु उसका पीछा करना छोड़ देती है, वह स्वस्थ तथा भय रहित बन जाता है। भगवत् चरणारविन्दों के सन्निकट पहुँचते ही जीव की आधि, व्याधि, चिन्ता, शोक, भय, विवशता आदि सभी दूर चली जाती हैं। किसी भी जीव को कोई भी बड़भागी पुरुष भगवान् के सम्मुख पहुँचा दे, तो उससे बढ़कर पुण्यात्मा पुरुष, दानी पुरुष तथा सत्कर्म करने वाला पुरुष संसार में कोई दूसरा नहीं है।

भगवान् बड़े कृतज्ञ हैं, भगवान् के लिये जो तनिक सा भी त्याग करता है, उसी से उसके कृतज्ञ बन जाते हैं। गीध ने सीता जी की रक्षा का प्रयत्न किया, कृतज्ञ भगवान् ने उसे पिता की तरह माना। अपने हाथों उसके और्ध्व दैहिक संस्कार किये, गज ने एक कमल का फूल अपनी सूँड़ में लेकर भगवान् को चढ़ाना चाहा, इसी पर आप नंगे पैरों ही दौड़ पड़े। भीलिनी ने जंगली बेर भगवान् को अर्पण किये, इसी पर उसे सद्गति दी। यहाँ तक कि पूतना ने तो भगवान् को मारने की इच्छा से गरल लपेटा अपना स्तन प्रदान किया, इसी पर भगवान ने उसे माता की सी गति दे दी, सुदामा ने तो मुट्ठी पर चावलों की कनी ही भगवान् को अर्पण की थी, उसी पर उसे देवराजों को भी दुर्लभ सम्पत्ति प्रदान कर दी। एक भक्त ने तो मुँह में उगला हुआ फल ही भगवान् को अर्पित किया और भगवान् ने उसे ग्रहण किया।

भगवान् तो भक्त की दी हुई छोटी से छोटी वस्तु को भी बड़े आदर से प्रेम पूर्वक ग्रहण करते हैं। चाहे भक्त तुलसी का एक दल ही अर्पण करे। एक जंगली फूल ही चढ़ा दे, कहीं से बेर, बिल्व, कपित्थ आदि फल ही चढ़ा दे यहाँ तक कि एक चुल्लू जल ही अर्पण करे, तो भगवान् इन क्षुद्र वस्तुओं को प्रयतात्मा होकर–प्रसन्न होकर—लेते हैं। फिर जो लोग बड़ी श्रद्धा से, बड़े वैभव से, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय जल, स्नानीय जल, पंचामृत, वस्त्र, यज्ञोपवीत, गंध, धूप, दीप तथा नाना भाँति के नैवेद्य अर्पण करते हैं। मुख शुद्धि के निमित्त सुगंधित पान, पुंगीफलादि देते हैं, रत्नादि दक्षिणा अर्पित करते हैं, उनके लिये तो कहना ही क्या ? भगवान् भक्तों की दी हुई इन सामग्रियों को बहुमान-पुरस्सर होकर ग्रहण करते हैं, किन्तु इन सबसे भी बढ़कर एक उपहार है, जिसे वे सबसे अधिक प्रसन्नता के साथ ग्रहण करते हैं, यहाँ तक कि इस भेंट को वे कौस्तुभमणि से भी अधिक मूल्यवान् समझते हैं। वह भेंट है किसी जीव को निर्भय बनाकर भगवान् के सम्मुख उपस्थित करना।

जो दयालु कृपालु आचार्य किसी जीव को प्रपन्न बनाकर–प्रपत्ति प्रदान करके–भगवान् के सम्मुख करते हैं, तो भगवान् इस भेंट को पाकर अपने को कृत कृत्य समझने लगते हैं। भगवान् उस शरणागत जीव को अपने मणियों के मुकुट की मणि बनाकर शिर पर धारण करते हैं।

यह जीव अथाह संसार सागर में गोता खा रहा है, ऐसे जीव पर दया करके जो आचार्यचरण ज्ञान का उपदेश देते हैं, वे कितना बड़ा महान् उपकार करते हैं, उनके पुण्य की कोई सीमा नहीं। वे तो नररूप धारण किये हुए स्वयं साक्षात् श्रीहरि ही हैं, इसीलिये स्वयं साक्षात् श्री हरि ने अपने श्री मुख से आज्ञा की

है—"आचार्य मां विजानीयात्, नावमन्येत कर्हिचित्। न मर्त्य बुद्धया सूयेत् सर्वदेवमयो गुरुः॥" अर्थात् ज्ञानदाता आचार्य को मेरा ही स्वरूप जानो। उसमें और मुझमें अणुमात्र भी भेद भाव न करो। ऐसे आचार्य का कभी भूलकर भी अपमान न करना। उनमें कभी मनुष्य बुद्धि भी मत करना। वे गुरुदेव तो सर्वदेवमय हैं। वे ब्रह्मा हैं, वे विष्णु हैं। और वे महेश्वर हैं। अधिक क्या कहे वे ही स्वयं साक्षात् परब्रह्म परमात्मा हैं। ऐसे ज्ञानदाता गुरु के पादपद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब अर्जुन ने भगवान् से गीताज्ञान प्रचारक के सम्बन्ध में यह प्रश्न किया कि वह विशुद्ध प्रचारक आपको कैसा लगता है?" तो भगवान् कहने लगे—"अर्जुन! जो पुरुष मुझमें अत्यन्त प्रेमभाव रखकर इस गीताज्ञान को मेरे भक्तों में स्थापित करेगा, उससे बढ़कर मेरा प्रिय करने वाला मनुष्यों में कोई दूसरा है ही नहीं।"

अर्जुन ने पूछा—"इस समय भले ही न भी हो, किन्तु भूत काल में तो इससे बढ़कर बहुत से भक्त हो गये होंगे?"

भगवान् ने कहा—"अर्जुन! तुम कैसी बात करते हो? अरे, जो मेरे गुह्य से गुह्य गीताज्ञान को योग्य अधिकारी को प्रदान करने वाला है, उसके समान प्रिय भक्त न आज तक कोई हुआ न वर्तमान में है ही।"

अर्जुन ने कहा—"ठीक है, न हुआ होगा और न अब ही है, किन्तु भविष्य तो अभी काल के गर्भ में ही छिपा है, संभव है आगे कोई इससे प्रिय भक्त उत्पन्न हो जाय?"

भगवान् ने कहा—"अर्जुन! तुम बात को समझते नहीं। भैया, साधारण लोगों के लिये भविष्य काल के गर्भ में छिपा रहता है, किन्तु मैं तो त्रिकालज्ञ हूँ। तीनों ही काल मेरे लिये

हस्तामलक के सदृश प्रत्यक्ष हैं, अतः मुझसे न भूत छिपा है, न वर्तमान और न भविष्य ही छिपा है। अतः मैं दृढ़ता के साथ कह सकता हूँ, कि जीवाभय प्रदान करने वाले आचार्य के सदृश प्रिय भविष्य में भी नहीं होगा। उससे बढ़कर प्यारा मुझे कोई भी भूत, भविष्य तथा वर्तमान में नहीं है।"

अर्जुन कहे—"भगवन् ! यह तो आपने गीता शास्त्र को अध्ययन कराने वाले महापुरुष का महान् माहात्म्य वर्णन किया। अब मैं यह और जानना चाहता हूँ, कि जो इस गीताज्ञान का श्रद्धा के साथ अध्ययन करेंगे, तथा गीताज्ञान यज्ञ द्वारा आपका यजन करेंगे, उनको भी कुछ फल मिलेगा कि नहीं ?"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! अर्जुन के इस प्रश्न का भगवान् जो उत्तर देंगे, उसका वर्णन मैं आगे करूँगा।"

छप्पय

पराभक्ति मम करै मोइ ई सरबसु माने।
गीताज्ञान प्रसार यही गुरु सेवा जाने॥
ऐसो जो मम भक्त वही मेरो अति प्रियकर।
है वह सब तें बड़ो प्रियनिमें अतिशय प्रियतर॥
प्रिय, प्रियतर, प्रियतम परम उपमा ताकी अन्य नहिँ।
नहीं भयो, नहिँ होयगो, है नहिँ प्यारो ता समहिँ॥

गीता ज्ञान यज्ञरूपी पूजा से प्रभु प्रसन्न होते हैं

[४०]

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः ।
ज्ञानयज्ञेन तेनहमिष्टः स्यामिति मे मतिः ।।*
(श्री भ० गी० १८ अ० ७० श्लोक)

छप्पय

ज्ञान देन की शक्ति नहीं तो पाठ करै नित ।
प्रेम सहित नित पाठ करै मोमें धरिकें चित ।।
सुखद धरम सम्वाद पार्थ ! यह मेरो तेरो ।
पढ़ै प्रेम तैं नित्य न समुझै बेर सबेरो ।।
मेरो निश्चित मत यही, ज्ञान यज्ञ वह करतु है ।
तातैं मोकूँ पूजि कैं, ज्ञान भँडारो भरतु है ।।

वासुदेव ही परम धर्म हैं। वासुदेव ही सर्वस्व हैं। वासुदेव से जो भी सम्बन्धित है, वही धर्म है। शास्त्रों ने जिसे करने की आज्ञा दी है, वह धर्म है। जिसका शास्त्रों ने निषेध किया है, वह अधर्म है। किन्तु समस्त शास्त्र उन वासुदेव भगवान् की निःश्वास है। अतः वासुदेव सब शास्त्रों के जनक हैं उन सब शास्त्रों में श्रेष्ठ-सबसे

---

* जो पुरुष हम दोनो के सम्वाद को पढेगा, तो उसके इस ज्ञान-यज्ञ से मैं पूजित होऊँगा। ऐसा मेरा मत है ।।७०।।

बढ़कर यह ब्रह्म विद्या सम्बन्धी योग शास्त्र श्रीमद्भगवत् गीता उपनिषद् है। इसको ऐसी महिमा क्यों है? इसे सभी शास्त्रों से परम श्रेष्ठ क्यों बताया है? इसलिये सर्वश्रेष्ठ कहा है, कि अन्य शास्त्र तो नाक से निकलने वाली निःश्वास मात्र हैं। उन निःश्वासों का प्राकट्य ऋषियों के द्वारा हुआ। जिस ऋषि को जिस मन्त्र का परिज्ञान होता है, वही ऋषि उस मन्त्र का माना जाता है, जिसकी महिमा का मन्त्र में वर्णन होता है, वही उस मन्त्र का देवता होता है, और जिस छन्द में वह मन्त्र प्रकट होता है, वही उसकी छन्द होती है। वह मन्त्र जिस कार्य में प्रयुक्त होता है वह उसका विनियोग कहलाता है। जिस मन्त्र का जप किया जाता है, उसके ऋषि का सिर पर न्यास करते हैं देवता का हृदय में और छन्द का मुख में न्यास किया जाता है। इस गीता रूप मन्त्र के ऋषि भी भगवान् वासुदेव हैं और वही उसके देवता भी हैं, क्योंकि भगवान् ने बार-बार अपनी महिमा बताते हुए कहा है—"अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि" मैं तुझे सब पापों से मुक्त कर दूँगा। "तानहं द्विपतः क्रूरान्" मैं उन दुष्ट क्रूर पुरुषों को आसुरी योनियों में गिराता हूँ। "धारयाम्यहमोजसा" मैं ही अपने ओज से चराचर को धारण करता हूँ। "आदित्यानामहं विष्णुः" मैं ही आदित्यों में विष्णु हूँ इत्यादि-इत्यादि। अनेकों स्थानों पर भगवान् ने 'अहं' कहकर अपने को परदेवत बताया है। इसलिये इस गीताज्ञान के ऋषि भी श्री भगवान् ही हैं और देवता भी श्री भगवान् ही हैं। अतः अन्य वेदादि शास्त्र तो नाक से निकले हैं। यह स्वयं साक्षात् पद्मनाभ भगवान के कमल रूपी मुख द्वारा निःसृत शास्त्र है। फिर यह शास्त्र किसी अन्य ऋषि से नहीं कहा है। भगवान् ने अपने स्वयं ऐसे आत्मीय जन से कहा है, जिसमें और अपने में भगवान कोई अन्तर नहीं समझते हैं।

एक सत्त्व के नर और नारायण दो रूप हो गये है। जो नर है, वे ही नारायण है और जो नारायण है वे ही नर है।

जब पाँचों पाडव जूए मे हारकर द्रौपदी के साथ वन चले गये, और यह समाचार द्वारका में श्रीभगवान् ने सुना, तो वे तुरन्त भोज, वृष्णि तथा अन्धक वशीय अपने स्वजनों के सहित जहाँ पाडव निवास करते थे, उस काम्यक वन मे गये। द्रुपद आदि और भी बहुत से राजा इस समाचार को सुनकर काम्यक वन मे आ गये थे। सब के अग्रणी भगवान् वासुदेव ही थे। वे सभी राजा धर्मराज को चारों ओर से घेरकर उसी प्रकार बैठ गये, जैसे देवराज इन्द्र को घेरकर समस्त देवतागण बैठे जाते हैं। उस समय पाडवों के प्रेम से जिनका हृदय द्रवीभूत हो गया है, पाडवों को निर्जन वन में वास करते देखकर जिनका क्रोध उभर आया है, वे श्री कृष्णचन्द्र समस्त राजाओं को सुनाते हुए मेघ गम्भीर वाणी में कहने लगे—"समस्त राजागणो! आप सब कान खोल कर सुन लो। यह पृथ्वी दुष्टात्मा दुर्योधन, कर्ण, दुश्शासन, शकुनि तथा धृतराष्ट्र के समस्त पुत्रों के रक्त की प्यासी है। ये सब क्रूर हैं, इन्होंने पाडवों को छल कपट से अन्याय पूर्वक जीतकर वनवासी बना दिया है। धर्मराज तो धर्मात्मा हैं, ये तो कुछ बोलेंगे नहीं। हम सब राजा मिलकर इन समस्त कौरवों का नाश कर डालें। यही सनातन धर्म है। कपटी धूर्तों को मार देना क्षत्रिय का परम धर्म है, यदि कौरवों की सहायता को दूसरे राजा आवेंगे, तो हम उन्हें भी मार डालेंगे।" ऐसा कहकर भगवान वासुदेव परम क्रुद्ध हुए। उनके क्रोध को देखकर सभी राजा भयभीत हो गये और उन्हें प्रतीत होने लगा कि भगवान अपने क्रोध से समस्त जगत को भस्म कर डालेंगे।

उन्हें क्रुद्ध देखकर किसी का साहस उनके सम्मुख बोलने

का नहीं हुआ। तब उनके परम सुहृद अनन्य सखा परम आत्मीय अर्जुन ने उन्हे अनेक स्तुतियो से, उनके पूर्व जन्म के पराक्रमो और गुण गानो से जैसे तैसे शान्त किया।

शान्त होने पर भगवान् अर्जुन से कहने लगे—"अर्जुन! तू मेरा है और मैं तेरा हूँ अर्थात् हम तुम दोनों एक ही है। देख, जो मेरे भक्त हैं वे तेरे ही है और जो तेरे भक्त हैं वे मेरे ही हैं। तेरा जो शत्रु है, वह मेरा भी शत्रु है। तेरा जो प्रेमी है वह मेरा भी प्रेमी है। देख, तू नर भगवान् का स्वरूप है और मैं विष्णु तथा नारायण स्वरूप हूँ। हम दोनो ही धर्म और मूर्ति माता द्वारा उत्पन्न होकर साथ ही साथ इस पृथ्वी पर आये थे। इसलिये न तो तू मुझसे भिन्न है और न मै तुझसे भिन्न हूँ। हे भरतवंशावतंस अर्जुन! हम दोनो में तनिक भी-अणुमात्र भी अन्तर नहीं। यह बात किसी की बुद्धि मे नहीं बैठ सकती।"

अतः ऐसे ऐक्यरूप नर नारायण भगवान् का यह सवाद है। यह सवाद भी साधारण नहीं धर्म युक्त सम्वाद है और वह किसी धारण स्थान में नहीं हुआ। धर्म्य युद्ध स्थान मे हुआ। जिस धर्म्य युक्त युद्ध से श्रेयस्कर क्षत्रिय के लिये कोई दूसरा धार्मिक कार्य ही नहीं। एक तो यह श्री भगवान् के मुख कमल द्वारा निसृत, दूसरे एक रूप में दो विभक्त हुए नर और नारायण रूप श्रीकृष्ण और अर्जुन का सम्वाद। वह भी परम पावन मार्गशीर्ष महीने मे हुआ। वह भी सर्वसिद्धात्रयोदशी के दिन और शुक्लपक्ष में प्रकट हुआ। वह भी धर्म्य युद्ध के अवसर मे धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र में हुआ। ऐसा देश से भी पवित्र, काल से भी पवित्र, और पात्रता से भी पवित्र सम्वाद क्या है एक प्रकार का यज्ञ ही है। यह भी द्रव्य यज्ञ नहीं, तप यज्ञ नहीं, योग यज्ञ नहीं, तथा जपयज्ञ नहीं। इन समस्त यज्ञों से श्रेष्ठतम ज्ञानयज्ञ है।

समस्त यज्ञों का एक मात्र उद्देश्य भगवान् को सन्तुष्ट करना ही है। जिस कर्म से भगवान् सन्तुष्ट नहीं। उस कर्म के करने से कोई लाभ नहीं। उसमें तो केवल व्यर्थ का परिश्रम ही हाथ लगता है। जिस कर्म के द्वारा प्रभु की पूजा न हो, जिन साधनों से प्रभु पूजित न हों, वे कर्म और साधन सब व्यर्थ हैं। इस ज्ञानयज्ञ रूप श्रीकृष्णार्जुन सम्वाद स्वरूप धर्ममय गीताशास्त्र के अध्ययन से, गुरु मुख द्वारा अर्थ सहित श्रवण से, या केवल पाठ मात्र से ही भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं। भगवत् प्रसन्नता प्राप्त कर लेना ही जीव का परम पुरुषार्थ है। वह इस गीताज्ञान के अध्ययन से अवश्यमेव प्राप्त हो सकेगा।

सूतजी कहते हैं—मुनियो! जब अर्जुन ने भगवान् से यह पूछा कि भगवन्! प्रचारक ज्ञान दाता की महत्ता का तो आपने वर्णन कर दिया, अब यह बताइये कि इस गीता ज्ञान के अध्येता को क्या फल मिलेगा?"

भगवान् ने कहा—"अर्जुन! फिर वही बात, भूल गये क्या? मा फलेषु कदाचन', फल की इच्छा मत रखना।

अर्जुन ने कहा—"न सही फलाहार, मैं तो अमृताशी बन जाऊँगा। अध्ययन करने वाला अमृत प्राप्त कर लेगा क्या?"

भगवान् ने कहा—"अमृत क्या?"

अर्जुन ने कहा—"अमृत प्रियदर्शनम्' प्यारे का दर्शन हो जाना यही अमृत है।"

भगवान ने कहा—"प्रिय क्या?"

अर्जुन ने कहा—"सबके एक मात्र सुन्दर प्रिय तो आप ही हो।" आप जिस कर्म द्वारा पूजित हो जायँ, प्रसन्न हो जायँ, वह अमृत से भी बढ़कर है।

भगवान ने कहा—"अर्जुन! अमृत तो यह मेरा तुम्हारा सम्वाद रूप गीताज्ञान है।"

अर्जुन पूछा—"गीताज्ञान अमृत कैसे है ?"

भगवान ने कहा—"देखो, जो वेद की समस्त उपनिषदें हैं वे ही तो गायें हैं। इन गौओं का पालन करने वाला दुहने वाला गोपाल मैं प्रसिद्ध ही हूँ। बिना बछड़ा का गौ का दूध पीना निषेध है, अतः इन इतनी गौओं के बछड़ा, हे पार्थ ! तुम हो। इन गौओं को दुहकर जो दूध मैंने निकाला, वह साधारण दूध नहीं। यह गीता रूप दुग्धामृत है। इस दूध को जो पी लेंगे, उसके द्वारा मैं अपने को पूजित मानूँगा, मैं उस पीने वाले पर प्रसन्न हो जाऊँगा, उससे सन्तुष्ट हो जाऊँगा।"

अर्जुन ने कहा—"भगवन् ! यह आप कैसी उलटी बात कह रहे हो। प्रसन्नता तो अपने खाने पीने से होती है। दूसरा गीतामृत का पान करे और प्रसन्न हो जायँ आप, यह क्या बात हुई ?"

भगवान् ने कहा—"देखो, भैया ! कोई प्रेम पूर्वक सुन्दर रसोई बनाता है। तो उस बनी रसोई को बनाने वाला ही खा ले तो उसे उतनी प्रसन्नता न होगी, जितनी अपने सुहृद प्रेमी को खिलाकर होगी। अपने खाने पीने की अपेक्षा अपने प्रेमी को खिलाने पिलाने में अधिक प्रसन्नता होती है। अतः तुम्हारे द्वारा पुहनाई हुई गौओं के दूध को जो मेरे द्वारा निकाला हुआ है, उसे जो पान करेंगे उस पान रूप ज्ञानयज्ञ के द्वारा मैं ही पूजित होता हूँ ऐसी मेरी निश्चिता मति है।

अर्जुन ने कहा—"भगवन् ! आप गीता शास्त्र को अधिकारियों को सुनाने वाले का, उसके प्रचारक प्रसारकों का तथा अध्ययन करने वालों का, माहात्म्य तो बता चुके। अब जो स्वयं अध्ययन करने में असमर्थ व्यक्ति है, वे स्वयं तो पढ़ नहीं सकते,

यदि वे दूसरों से सुन ही लें तो उसके श्रवण का भी कुछ माहात्म्य होगा या नहीं ?"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! अब आगे भगवान् जैसे श्रवण करने वालों के माहात्म्य का वर्णन करेंगे उस कथा प्रसङ्ग को मैं आगे वर्णन करूँगा।"

छप्पय

तू अरु हौं सुनु मित्र ! तत्त्व तैं एकहि भैया !
हौं तो हूँ गोपाल उपनिषद सबरी गैया ॥
तू बछरा बनि सब गैयनि कूँ पार्थ ! पुन्हावै ।
पुन्हीं गैयनि दुहूँ अमृतमय दुग्ध कहावै ॥
दुग्धामृत कूँ जे पियें, ज्ञानयज्ञ वर मानिकें ।
पूजित तातैं होउँ हौं, पीयो यह सब जानिकें ॥